International Journal of Advanced Academic Studies 2020; 2(1): 255-256

E-ISSN: 2706-8927
P-ISSN: 2706-8919
Impact Factor: RJIF 5.12
IJAAS 2020; 2(1): 255-256
Received: 13-11-2019
Accepted: 20-12-2019

डॉ० राम बालक राय
पूर्व शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी–विभाग, ल.ना.मि.वि., दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ० राम बालक राय
पूर्व शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी–विभाग, ल.ना.मि.वि., दरभंगा, बिहार, भारत

बौद्धदर्शन एवं प्रमाण

डॉ० राम बालक राय

सारांश–
भारतीय दर्शन में प्रमाण उसे कहते हैं जो सत्य ज्ञान करने में सहायता करे। अर्थात् वह बात जिससे किसी दूसरी बात का यथार्थ ज्ञान हो। प्रमाण एक मुख्य विषय है। 'प्रमा' का अर्थ होता है– यथार्थ ज्ञान। यथार्थ ज्ञान का जो करण हो अर्थात् जिसके द्वारा यथार्थ ज्ञान हो उसे प्रमाण कहा जाता है। भारतीय दर्शन में प्रमाणों की संख्या चार बतायी गई है– प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द।

प्रस्तावना–
बौद्ध–दर्शन से अभिप्राय उस दर्शन से है जो भगवान् बुद्ध के निर्वाण के बाद बौद्ध धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों द्वारा विस्तारित किया गया तथा बाद में पूरे विश्व में उसका प्रसार हुआ। 'दुःख से मुक्ति' ही बौद्ध धर्म का सदा मुख्य ध्येय रहा है। कर्म, ध्यान एवं प्रज्ञा इसके साधन रहे हैं। बुद्ध के उपदेश तीन पिटकों में संकलित हैं– सुत्तपिटक, विनयपिटक और अभिधम्मपिटक। ये पिटक बौद्ध धर्म के आगम हैं। क्रियाशील सत्य की धारणा बौद्धमत की मौलिक विशेषता है। उपनिषदों का ब्रह्म अचल और अपरिवर्तनशील है। बुद्ध के अनुसार परिवर्तन ही सत्य है।

पश्चिमी दर्शन में हैराक्लाइटस और बर्गसाँ ने भी परिवर्तन को सत्य माना है। इस परिवर्तन का कोई अपरिवर्तनीय आधार भी नहीं है। बाह्य एवं आन्तरिक जगत् में कोई ध्रुव सत्य नहीं है। बाह्य पदार्थ 'स्वलक्षणों' के संघात हैं। आत्मा भी मनोभावों और विज्ञानों की धारा है। इस प्रकार बौद्धमत में उपनिषदों के आत्मवाद का खंडन करके 'अनात्मवाद' की स्थापना की गई है। फिर भी बौद्धमत में कर्म और पुनर्जन्म मान्य हैं। आत्मा को न मानने पर भी बौद्ध धर्म करुणा से ओतप्रोत हैं। दुःख से द्रवित होकर ही बुद्ध ने संन्यास लिया तथा दुःख के निरोध का उपाय खोजा। अविद्या, तृष्णा आदि में दुःख का कारण खोजकर उन्होंने इनके उच्छेद को निर्वाण का मार्ग बताया। अनात्मवादी होने के कारण बौद्ध धर्म का वेदान्त से विरोध हुआ। इस विरोध का फल यह हुआ कि बौद्ध धर्म को भारत से निर्वासित होना पड़ा। किन्तु एशिया के पूर्वी देशों में उसका प्रचार हुआ।[1]

बुद्ध के अनुयायियों में मतभेद होने के कारण अनेकों सम्प्रदाय बन गए। सिद्धान्तभेद से बौद्ध–परम्परा में चार दर्शन प्रसिद्ध हैं। इनमें वैभाषिक और सौत्रान्तिक मत हीनयान परम्परा में हैं। यह दक्षिणी बौद्धमत हैं। इसका प्रचार भी लंका में है। योगाचार और माध्यमिक मत महायान परम्परा में हैं। यह उत्तरी बौद्धमत है। इन चारों दर्शनों का उदय ईसा की आरंभिक शताब्दियों में हुआ। इसी समय वैदिक परम्परा में षड्दर्शनों का उदय हुआ। इस प्रकार भारतीय परम्परा में दर्शन सम्प्रदायों का आविर्भाव लगभग एक साथ ही हुआ एवं उनका विकास परस्पर विरोध के द्वारा हुआ है। पश्चिमी दर्शनों के समान ये दर्शन पूर्वापर क्रम में उदित नहीं हुए। वसुबन्धु (400ई.), कुमारलात (200ई.) मैत्रेय (300ई.) एवं नागार्जुन (200ई.) इन दर्शनों के प्रमुख आचार्य थे। वैभाषिक मत बाह्य वस्तुओं की सत्ता तथा स्वलक्षणों के रूप में उनका प्रत्यक्ष मानता है। अतः उसे बाह्य प्रत्यक्षवाद अथवा 'सर्वास्तित्ववाद' कहते हैं। सैत्रान्तिक मत के अनुसार पदार्थों का प्रत्यक्ष नहीं, अनुमान होता है। अतः उसे बाह्यानुमेयवाद कहते हैं।[2]

योगाचार मत के अनुसार बाह्य पदार्थों की सत्ता नहीं। हमे जो कुछ दिखाई देता है वह विज्ञान मात्र है। योगाचार मत विज्ञानवाद कहलाता है। माध्यमिक मतानुसार विज्ञान भी सत्य नहीं है। सब कुछ शून्य है। शून्य का अर्थ निरस्वभाव, निःस्वरूप अथवा अनिर्वचनीय है। शून्यवाद का यह शून्य वेदान्त के ब्रह्म के बहुत निकट आ जाता है। .

ईसापूर्व छठी शताब्दी को ऐतिहासिकों ने सामाजिक क्रान्ति एवं आध्यात्मिक अनुभूतियों का य. माना है। चीन, भारत तथा यूनानप्रभृति देशों में इस समय पर्याप्त सामाजिक परिवर्तन और आध्यात्मिक क्रान्ति हुई। इस समय भारत में एक आध्यात्मिक क्रान्ति हुई, जो कि 'अभिसम्बोधि' नाम से या हुई।[3]

भारतीय इतिहासकारों के अनुसार महात्मा बुद्ध ने जिस युग में जन्म लिया था, उस युग में यज्ञ जैसा पवित्र एवं उदात्त कर्म भी कलुषित हो चुका था। मेध, हिंसा और बलिकर्म महत्त्वपूर्ण हो चके थे। करुणा, कृपा, सहानुभूति जैसी भव्य भावना कपट की पृष्ठभूमि में कहीं समाप्त हो गई थी। उन दोनों अतियों के बीच 'अभिसम्बोधि' नामक आध्यात्मिक एवं धार्मिक नई प्रतिभा का स्फुरण हुआ।

अन्तर्विरोधों की इस पृष्ठभूमि में महात्मा बुद्ध ने क्लेश–मुक्ति के मार्ग का अन्वेषण किया।

संसार के समस्त प्राणियों की दुःख की अनिवार्यता तथा दुःख मुक्ति के लिए साधना का मध्यमार्ग उनकी अनुभूति थी। दार्शनिक शब्दावली में इसे ही प्रतीत्या समुत्पाद के रूप में अभिव्यक्त किया गया है प्रतीत्य समुत्पाद का अर्थ है कि सभी वस्तुएँ किसी–ना–किसी कारण से उत्पन्न है इसलिए वे उस पर निर्भर है। कारण के समाप्त होने पर कार्य स्वतः समाप्त हो जायेगा। सापेक्षतावाद के आधार पर विचार किया जाय तो प्रतीत्यसमुत्पाद संसार है तथा यथार्थतः यही निर्वाण है। दृश्यमान जगत् में सब कुछ सापेक्ष्यता पर निर्भर तथा जरा मरण के अधीन होने के कारण अनित्य है, संसार की कोई वस्तु सत्य नहीं है क्योंकि वह जरा मरण के अधीन है तथा असत्य भी नही है, क्योंकि वह जरामरण के अधीन है तथा असत्य भी नहीं है, क्योंकि उसका अस्तित्व दिखाई पड़ता है। सत्य तथा असत्य दोनों जातियों के बीच स्थित होने के कारण यही मध्यम मार्ग है।[4]

प्रतीत्यसमुत्पाद के अनुसार जगत् में प्राणियों को दुःख भोगते देखा जाता है। इस दुःखरूपी कार्य का कोई कारण है, यदि कारण समाप्त हो जाय, तो कार्यरूप दुःख स्वतः समाप्त हो जाय। दुःख का इस स्थिति को चार आर्य सत्य के रूप में व्यक्त किया गया है।

दुःख–संसार दुःख की प्रतिभूति है, दुःखद सत्ता की अनुभूति है और अन्तर्वेदना की स्पष्ट अभिव्यक्ति है। बुद्ध ने सांसारिक मनुष्यों को दुखी देखकर अनुभव किया कि संसार दुःखमय अत्यधिक धन रखने में दुःख इसके रक्षण में दुःख व्यय करने में दुःख, तो फिर उस अर्थ का किस प्रकार मुख का कारण कहा जाय? धम्मपद के अनुसार– संसार जलते हुए घर की तरह तब इसमें सो क्या हो सकती है? आनन्द क्या हो सकता है। इस सन्दर्भ में महर्षि पतञ्जलि ने स्पष्ट शब्दों में कहा है– 'दुःखमेव सर्वविवेकिनः।'[5] अर्थात् विवेकी पुरुष की दृष्टि में यह समग्र संसार ही दुःख है। बुद्ध की दृष्टि में भी संसार दुःखमय है।

मनुष्य की अन्तःप्रवृत्ति ही सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है। अन्तःप्रवृत्ति से यहाँ तात्पर्य चित्त से है। विज्ञान जति चित्त की सत्ता हो यथार्थ है, वास्तविक है। लंकावतारसूत्र में स्पष्ट कहा गया है कि चित्त की ही प्रवृत्ति होती है और चित्त की ही निवृत्ति (विमुक्ति) भी। चित्त को छोड़कर दूसरी कोई वस्तु उत्पन्न नहीं होती और न तो उसका नाश ही होता है। यथा–

'चित्तं वर्त्तयते चित्तं चित्तमेव विमुच्यते।
चित्तं हि जायते नान्यच्चितमेव निरुच्यते।।'[6]

वसुबन्धु ने भी 'विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि' में इसी तथ्य का बड़ा ही मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। 'विज्ञान' शब्द के यहाँ सन्दर्भगत तीन पर्याय बतलाये गये हैं– चित्त, मन तथा विज्ञप्ति। यथा–

'चित्तं मनश्च विज्ञानं संज्ञा वैकल्पवर्जिताः।
विकल्पधर्मतां प्राप्ताः श्रावका न जिनात्मजाः।।'[7]

किसी विशिष्ट क्रिया की प्रधानता मानकर इन शब्दों का प्रयोग किया जाता है। चेतन क्रिया से सम्बद्ध होने से यह 'चित्त' कहलाता है। मनन क्रिया करने से मन है। विषयों के ग्रहण करने में कारणभूत होन से ही यह विज्ञान पदवाच्य होता है। यथा–

'चित्तमालयविज्ञानं मनो यन्मननात्मकम्।
गृह्णाति विषयान् येन विज्ञानं हि तदुच्यते।।'[8]

माध्यमिकों को लक्ष्य बनाकर सर्वसिद्धान्तसंग्रह में कहा गया है कि– यदि तुम्हारा सर्वशून्यता का सिद्धान्त मान्य ठहराया जाय, तो शून्य ही तुम्हारे लिए सत्यता के प्रमाण की कसौटी होगी, तब दूसरे प्रतिवाद के साथ वाद–विवाद करने का तुम्हें अधिकार कहाँ से होगा। जैसे–

'त्वयोक्तसर्वशून्यत्वे प्रमाणं शून्यमेव ते।
अतो वादेऽधिकारस्ते न परेणोपपद्यते।।'[9]

प्रमाण के भावात्मक होने पर ही वाद–विवाद के लिए अवकाश सम्भव है। इस तरह यदि शून्य को हम प्रमाण मान लेते हैं, तब उस स्थिति में शास्त्रार्थ की कसौटी ही क्या होगी? कैसे परपक्ष का खण्डन और स्वपक्ष की स्थापना कोई कर सकेगा। जैसे–

'स्वपक्षस्थापनं तद्वत् परपक्षस्य दूषणम्।
कथं करोत्यत्र भवान् विपरीतं वदेन्न किम्।।'[10]

भावात्मक नियामक के अभाव में इस स्थिति को रोका नहीं जा सकता है। ऐसा नहीं होने तर्कशास्त्र का आधार हिल जायेगा। अतः शून्यवादियों को भी विज्ञानवाद को, उसमें भी खासकर 'प्रमाण' की भावात्मकता को स्वीकार करना पड़ेगा। अन्यथा तर्कशास्त्रों में सर्वत्र अनवस्था का पर खड़ा हो जायेगा।

निष्कर्ष–

प्रमाण बौद्ध–दर्शन का एक विशिष्ट विषय है। बौद्ध–दर्शन के अनुसार प्रत्यक्ष के बाद अब अनुमान प्रमाण की बात बची। बौद्ध–दर्शन के अनुसार अनुमान के दो भेद माने गये हैं– स्वार्थानुमान और परार्थानुमान। धर्मकीर्ति का कथन है कि अनुमेय में त्रिरूप (पक्षसत्व, सपक्षत्व, विपक्ष व्यावृतत्त्व) लिंग अर्थात् हेतु से जो ज्ञान उत्पन्न होता है, उसे स्वार्थानुमान कहते हैं। जैसे– 'तत्र स्वार्थ त्रिरूपाल्लिंगाद्यनुमेये ज्ञानं तदनुमानम्।'[11] वाक्यों के द्वारा दूसरे को अप्रत्यक्ष जो ज्ञान कराया जाता है, उसे ही परार्थानुमान कहते हैं। जैसे– 'त्रिरूपलिङ्गाख्यानं परार्थानुमानम्।'[12]

'प्रमाण' विज्ञानवाद का एक विशिष्ट आलोच्य विषय है। प्रमाण तर्कशास्त्र की एक विज्ञप्ति है। विषयों की चेतना है। यह एक विशिष्ट तत्त्व है। इसका स्वरूप नित्य है। योगाचार के अनुसार समस्त विश्व प्रत्ययात्मक आत्मरूप है। विश्व का विकास प्रत्ययात्मक (कमंसपेजपब) है, परन्तु सांख्य के अनुसार विश्व का विकास यथार्थ परिणाम (त्मसपेजपब) है। इन सारे तर्कों का आधार प्रमाण ही माना जाता है।

सन्दर्भ–

1. बौद्ध प्रमाण दर्शन– 49
2. बौद्ध ग्रन्थमाला, पृ.– 12
3. बौद्ध प्रमाण मीमांसा पृ.– 87
4. बौद्ध निबन्धावली समाज एवं संस्कृति, पृ.– 29
5. पातञ्जलयोगदर्शन– 2.15
6. लंकावतारसूत्र– 3.27
7. विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि– 1.17
8. योगाचार– 12
9. सर्वसिद्धान्तसंग्रह– 4.2
10. सर्वसिद्धान्तसंग्रह– 4.3
11. प्रमाणवार्तिककारिका– 1.15
12. प्रमाणवार्तिककारिका– 1.17